International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 12-11-2019; Accepted: 13-12-2019
www.socialsciencejournal.in
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 52-54

महात्मा गांधी, खादी एवं चरखा (एक अध्ययन एवं विमर्श)

डा0 दीप्ति जायसवाल
अतिथि प्रवक्ता, इतिहास विभाग, खवाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, उर्दू, अरबी–फारसी, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
खादी का भारत में बहुत गहरा अर्थ है। यह केवल हाथ से बुना हुआ कपडा नहीं है, बल्कि एक सम्पूर्ण आन्दोलन विचारधारा है। गाँधी जी द्वारा शुरू किये गये खादी आन्दोलन में एक विचारधारा को बढ़ावा दिया, एक विचार यह था कि भारतीय कपास पर आत्मनिर्भर हो सकते है और विदेशी कपड़े से मुक्त हो सकते है, जिससे भारत में स्वदेशी के प्रयोग के साथ भारतीय अर्थ व्यवस्था में सुधार होगा। महात्मा गाँधी चाहते थे कि खादी राष्ट्रीय कपड़ा बने। महात्मा गाँधी ने 1920 के दशक में ग्रामीण स्वरोजगार एवं आत्मानिर्भरता के क्रम में (ब्रिटेन में मशीन से निर्मित कपड़ों का उपयोग करने के बजाये) खादी के प्रचार एवं प्रसार तथा उपयोग को बढ़ावा देना शुरू किया। गाँधी जी के अनुसार खादी के सार्वकालीक एवं सार्वभौम पहचान के बिना स्वराज नहीं प्राप्त हो सकता। चरखा एक समय भारत की गरीबी और पिछडेपन का प्रतीत था लेकिन गाँधी ने इसे अहिंसा और आत्मानिर्भरता के चिन्ह् के रूप में प्रस्थापित किया इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता सर्घष में खादी स्वदेशी और स्वराज प्राप्त करने का प्रमुख माध्यम बनी और गाँधी व जनता के मध्य पारस्परिक संबंध व समन्वय स्थापित करने में प्रमुख भूमिका के रूप में दिखाई देती है।
लेकिन आज करीब 150 वर्ष बाद 21वीं0 सदी में खादी अब फैशन स्टेटमेन्ट के रूप में पहचान बना रही है, हालाँकि यह ऐसा बदलाव है जो गाँधी के दृष्टिकोण से काफी अलग है।

कूट शब्द: खादी, चरखा, स्वदेशी, स्वराज, गाँधी, आत्मनिर्भरता, ग्रामीण स्वरोजगार

Introduction

"I believe that where there is pure and active love for the poor there is God also. I see God in every thread that I draw on the spinning wheel."

Gandhi

आज इस 2019.20 में हम महात्मा गांधी जी की 150वीं जयन्ती मना रहे हैं।इस डेढ़ दशक के बीतने के बाद आज भी यह प्रश्न उतना ही सार्वकालिक एवं सर्वदेशीय है कि गांधी हैं क्या ? कुछ लोग कहते सुने जाते हैं कि वह आज भी प्रासंगिक है। जैसे वह कोई हजारों वर्ष पहले हुआ हो। वह आज ही अभी अभी की तो बात है। बुद्ध की तरह 2500 वर्ष पहले की बात नहीं है। तब उसके आज भी प्रासांगिक होने की बात क्यों की जाती है? क्या इसलिये नहीं कि वह वास्तव में कभी अपने जीवनकाल में भी प्रासांगिक नही रहा, चाहे वह कितना भी बड़ा जननायक क्यों न रहा हो? इसके विपरीत आईन्स्टाइन ने कहा था कि ''आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर विश्वास करना कठिन पायेंगी कि इस धरती पर और हमारे ही जैसी हाड़ मांस की देह में कोई ऐसा भी व्यक्ति हुआ है जैसा गांधी था।'' किन्तु ये उदगार यद्यपि गांधी जी के प्रति आदर और श्रद्धा की पराकाष्ठा के द्योतक हैं । ये परोक्षतः यह भी व्यक्त करते है कि गांधी किसी भी युग विशेष के लिये प्रासंगिक नहीं थे। वह केवल सार्वकालिक थे–आत्मा की आवाज की तरह, जिसे हम अक्सर कभी नही सुनते। किन्तु जो हमारे भीतर सदैव और समान रूप से बोलती है । वह आवाज किसी कंठ से नही बोलती, इसलिये उसके लिये न किसी धरती की आवश्यकता है और न हाड़ मांस की । बस आश्चर्य की बात यह है कि यह आवाज मोहनदास करमचन्द गांधी के रूप में इस धरती पर और हमारे ही जैसे हाड़ मांस की देह के माध्यम से प्रकट हुई।

आधुनिक सभ्यता आज अपने प्रभाव के शिखर पर है। लेकिन उसकी जड़े खोखली हैं। वह जिस विकास का दावा करती है वह विकास करोड़ों के लिए विनाशकारी सिद्ध हो रहा है। प्राकृतिक ससाधनों को खत्म कर रहा है यह विकास न स्थाई है, न स्थाई हो सकता है। वह न संतोष दे सकता है, न शान्ति। वह तो मनुष्य की मनुष्यता पर प्रहार कर रहा है। मनुष्यता के मूल्यों की बलि चढ़ाने वाले इस विकास के खिलाफ आक्रोश बढ़ा रहा है। उपभोक्तावाद तथा अन्तर्राष्ट्रवाद की अंधी दौड में हमने राष्ट्र चिन्तन एवं समाज चिन्तन न केवल वैचारिक विरासत को खो दिया है बल्कि उसे वर्तमान से जोड़ने का प्रयास भी नही किया और न ही उसके आइने से भविष्य को देखने का प्रयास किया। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक भारत में ऋषियों, मुनियों, चिन्तकों, विचारकों, मनीषियों के जीवन मूल्य हमारे मूल्यवान धरोहर हैं। ऐसी ही महान विभूतियों में गांधी हैं– जिन्होने ग्रामोद्धार,ग्राम स्वराज्य,आर्थिक समता, और सर्वोदय की अमूल्य वैचारिक धरोहर हमें प्रदान की। वास्तव में गांधी जी का आर्थिक दर्शन भौतिकवादी कम मानवीय मूल्यों पर अधिक आधारित है। गांधी जी एक ऐसी अर्थ व्यवस्था के समर्थक थे जो प्रतियोगिता पर आधारित न हो तथा जिसमें समाज के नैतिक मूल्यो का सम्मान हो।

गांधी जी के अनुसार स्वदेशी की संकल्पना

गांधी जी के लिए स्वदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष की केवल एक रणनीति मात्र नही थी बल्कि वह उनके तत्वज्ञान के लौकिक रूपान्तरण की प्रक्रिया की तार्किक परिणति थी। यह अलग बात है कि साध्य और साधन की एकात्मकता के उनके आग्रह के कारण उनके आचार शास्त्र और रणनीति के मध्य विभेद करना न तो सार्थक है न ही संभव। स्वयं गांधी जी के शब्दों में ''स्वदेशी आत्मा का धर्म है पर वह बिसर गया है, इससे उसके विषय में व्रत लेने की जरूरत रहती है। आत्मा के लिए स्वदेशी का अंतरिम अर्थ हमारे स्थूल संबंधों में आत्यान्तिक मुक्ति है। देह भी उसके लिये परदेशी है क्योंकि देह अन्य आत्माओं के साथ में एकता स्थापित करने में बाधक होती है, उसके मार्ग में विघ्न रूप है।''[1]

अतः आत्मा के धर्म से लौकिक आचार का नियम बनाने के क्रम में स्वदेशी की अभिव्यक्ति यूँ तो दृष्टिकोण और आचरण के प्रत्येक संदर्भ में होती है किन्तु इस विचार की अनुप्रयुक्ति का सर्वाधिक सटीक और प्रत्यक्ष संदर्भ आर्थिक होता है। गाँधी जी ने भी इस तथ्य का संज्ञान किया था। इसी कारण स्वदेशी गांधी की विकेन्द्रीकृत आर्थिक प्रणाली की धारणा की आधारशिला है। तथ्य यह है कि स्थानीय उत्पादन और स्थानीय उपभोग पर आधारित विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था का प्रतिमान,स्वदेशी के प्रति प्रेम की नैतिक आधार भूमि पर ही कार्यशील हो सकता है।

गांधी जी आर्थिक संदर्भ में स्वदेशी के माध्यम से सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को चरितार्थ करना चाहते थे। इस अर्थ में स्वदेशी उनकी अहिंसक अर्थ व्यवस्था का मर्मभूत पक्ष है। 'चरखा और खादी' स्वदेशी के गांधीय अर्थशास्त्र के सहज प्रतीक थे। उनका मत था कि ये दोनों विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति को तो सुनिश्चित करते ही हैं साथ ही आर्थिक प्रणाली के अनिवार्य मानवीय तत्व को भी इंगित करते हैं क्योंकि चरखा और खादी भारत के हजारों गावों में बेरोजगारी की समस्या को हल करने में निर्णायक हो सकते हैं। चरखा और खादी स्वदेशी के प्रतीकों के रूप में वस्तुतः पूँजी की अपेक्षा श्रम पर निर्भर लघु और कुटीर उद्योगों के महत्व को रेखांकित करते हैं तथा इस प्रकार स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति और राष्ट्रीय समृद्धि के मध्य तदात्मय स्थापित करते हैं।

गाँधी जी का विश्वास था कि चरखा ''स्वदेशी के प्रोत्साहन और साथ ही स्वावलम्बन की भावना'' के विकास का प्रभावी माध्यम बन सकता था और

समाज को शोषण से मुक्ति दिलाने में निर्णायक हो सकता था। इस अर्थ में वह आम जनता की आशाओं का प्रतीक था। चरखे का अर्थशास्त्र सामूहिक रूप से ग्रामीण आर्थिक गतिविधियों की उपादेयता को इंगित करता है तथा इसके विपरीत चरखे की विदाई ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निष्क्रिय हो जाने को इंगित करती है। गाँधी जी ने याद दिलाया कि चरखे की विदाई के कारण भारत के गाँव विविध रोजगारों, साथ ही अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से तथा उनके माध्यम से अर्जित होने वाली आर्थिक प्राप्तियों से वंचित हो गए। इस प्रकार उनके मत में चरखा, स्वदेशी और स्वदेशी आत्मनिर्भरता ग्राम्य जीवन का पर्याय है। इस संदर्भ में स्वदेशी का गांधीय तर्क सरल और सुग्राह्य है। यदि ग्रामों में निवास करने वाले लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामों में उत्पादित वस्तुओं का उपयोग करने की अपेक्षा, बाहर उत्पादित की गई वस्तुओं का प्रयोग करेगें तो वे सहज ही ग्रामीण बेरोजगारी और दरिद्रता का माध्यम बन जाएँगें।

गांधी जी ने यह भी स्पष्ट किया कि स्वदेशी नियम के रूप में किसी बाहरी वस्तु के प्रयोग का निषेध नहीं करता, केवल यह अपेक्षा करता है कि स्थानीय स्तर पर अनुपलब्ध और जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को ही बाहर से प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। गांधी जी के अनुसार ''स्वदेशी सार्वभौम धर्म है – जिसका अर्थ है निकटतम उपलब्ध संदर्भों – के प्रति कर्तव्यों का पालन प्रारम्भ करने, शनैः शनैः कर्तव्यों की परिधि को व्यापक बनाए जाने की भावना। स्वदेशी में स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। अपने विशुद्ध रूप में स्वदेशी सबकी सेवा का सर्वोत्तम रूप है।'' गांधी जी के 'स्वदेशी' का अर्थ विकेन्द्रीकृत अर्थ व्यवस्था, ग्राम और स्थानीय सामुदायिक विकास, सबको रोजगार ओर स्वावलम्बन। इसका अर्थ है – स्थानीय आत्मनिर्भरता और सहभागिता।

खादी क्या है ? सूत यानी सूत, सूत यानी नियम, सूत यानी प्रेम, सूत यानी आत्मा अर्थात् खादी सूत, नियम, प्रेम एवं आत्मा भी है।

भारत का अतीतकाल उल्लेखनीय एवं गौरवपूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण रहा है। इतिहास साक्षी है कि भारतीय अर्थ व्यवस्था पूर्ण रूप से सुदृढ़ अवस्था में थी, जिसका श्रेय यहां के हस्तकला एवं कुटीर उद्योगों को था। भारत में कुटीर उद्योगों में खादी ग्रामोद्योग (अर्थात् हाथ से कताई, और हाथ से बुनाई) का महत्व प्राचीनकाल से रहा है। भारत के प्राचीन साहित्यों में भी यहां के हस्तनिर्मित वस्त्रों के विषय में अनेक उल्लेख मिलते हैं । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आर0सी0दत्त का कहना है कि बुनाई भारतवर्ष का एक राष्ट्रीय उद्योग था, और करोड़ों महिलाओं के लिए एक पेशा था । आचार्य विनोबा भावे ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर जो गवेषणा की उसके अनुसार लगभग बीस हजार वर्ष पूर्व ऋषि गृत्समद ने कपास पौधे का ही नही बल्कि कपड़े बुनने का भी अविष्कार किया।[2]

'खादी केवल वस्त्र नही बल्कि विचार है'। ये वाक्य भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कही थी। खादी का नाम आते ही आज भी लोगों के जेहन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की छवि आती है। गाँधी, खादी और आजादी एक दूसरे के पूरक हैं। खादी हमेशा से ही हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक रहा है। खादी तो गांधी की विशेष कल्पना दृष्टि है। उनकी प्रतिभा उनकी पुरुषार्थ शक्ति ने खादी को एक व्यवहार्य रूप दे दिया लेकिन उसके पीछे इस महापुरूष की क्या कल्पना थी, यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है।[3]

महात्मा गाँधी ने अपनी ''आत्म कथा''[4] में लिखा है कि मुझे याद नहीं पड़ता कि सन् 1908 तक मैंने चरखा या करघा कहीं देखा हो। फिर भी मैंने हिन्द स्वराज्य में यह माना था कि चरखे के जरिए हिन्दुस्तान की कंगालियत मिट सकती है और यह तो सबके समझने वाली बात है कि जिस रास्ते से भुखमरी मिटेगी उसी रास्ते स्वराज्य मिलेगा। गांधी जी ने कहा था कि जब वे 1915 में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान वापस आए तब भी उन्होने चरखे के दर्शन नहीं किये थे। आश्रम के खुलते ही उसमें करघा शुरू किया गया किन्तु सबसे बड़ी मुश्किल उसे चलाने की थी क्योंकि आश्रम में सब कलम चलाने वाले या व्यापार करना जानने वाले लोग थे, इनमें से कोई भी कारीगर नहीं था। आगे चलकर मगनलाल गांधी के प्रयासों के परिणाम स्वरूप आश्रम में एक से एक के बाद एक नए –नए बुनने वाले तैयार हुए। अब आश्रमवासियों को अपने कपड़े खुद तैयार करके पहनने थे। अतः उन्होंने मिल के कपड़े पहनना बन्द कर दिया। उन सभी ने निश्चय किया कि वे हथकरघे पर देशी मिल के सूत का बुना हुआ कपड़ा पहनेगें।

ऐसा करने में मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला और साथ ही इन बुनकरों की समस्याओं का भी ज्ञान हुआ कि इन बुनकरों को किस प्रकार ठगा जाता है और किस प्रकार से दिन दिन कर्जदार होते जाते थे, इन सबकी जानकारी हमें मिली। गांधी जी ने लिखा है कि हमारे द्वारा सब कपड़ा तुरन्त बनाया जा सके ऐसी स्थिति नहीं थी। इस कारण बाहर के बुनकरों से अपनी आवश्यकता का कपड़ा बुनवा लेना पड़ता था। देशी मिल के सूत का हाथ से बुना कपड़ा झट मिलता ही नहीं था। बुनकर सारा अच्छा कपड़ा विलायती सूत का ही बुनते थे क्योंकि हमारी मिलें सूत कातती ही नहीं थी। बड़े प्रयत्न के बाद कुछ बुनकर हाथ लगे जिन्होने देशी सूत का कपड़ा बुन देने की मेहरबानी की। इन बुनकरों को आश्रम की तरफ से यह गारन्टी देनी पड़ी थी कि देशी सूत का बना हुआ कपड़ा खरीद लिया जायेगा। इस प्रकार विशेष रूप से तैयार कराया हुआ कपड़ा बुनवाकर हमने पहना। और मित्रों ने उसका प्रचार किया। इस प्रकार हम इन मिलों के अवैतनिक एजेण्ट बने। मिलों के सम्पर्क में आने पर उनकी व्यवस्था और उनकी लाचारी की जानकारी हमें मिली। वास्तव में इन मिलों का उद्देश्य खुद कातकर खुद बुनना ही था। वे हथकरघे की सहायता स्वेच्छा से नहीं, बल्कि अनिच्छा से करते थे।

गाँधी जी कहते हैं कि यह सब देखकर हम हाथ से कातने के लिए अधीर हो उठे। हमने देखा कि जब तक हाथ से कातेगें नहीं तब तक हमारी पराधीनता बनी रहेगी मिल के एजेण्ट बनकर हम देश की सेवा कर रहे हैं ऐसा हमें प्रतीत नहीं हुआ लेकिन इस मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह थी कि न तो कहीं चरखा मिलता था और न ही कहीं चरखे का चलाने वाला मिलता था। कुकड़ियां आदि भरने के चरखे तो हमारे पास थे, पर उन पर काता जा सकता था इसका तो हमें ख्याल ही नहीं था। एक बार कालीदास वकील एक बहन को खोजकर लाए। उन्होंने कहा कि यह बहन सूत कातकर दिखाएगी। उसके पास एक आश्रमवासी को भेजा जो इस विषय में कुछ बता सकता था, मैं पूछताछ किया करता था पर कातने का जारा इजारा तो स्त्री का ही था। अतएव ओने कोने में पड़ी हुई कातना जानने वाली स्त्री तो किसी स्त्री को ही मिल सकती थी।

सन् 1917 में मेरे गुजराती मित्र मुझे भड़ोच शिक्षा परिषद में घसीट ले गये थे। वहां महासाहसी विधवा बहन गंगाबाई मुझे मिलीं। वह पढ़ी लिखी अधिक नहीं थी पर उनमे हिम्मत और समझदारी साधारणतया जितनी शिक्षित बहनों में होती है उससे अधिक थी। उन्होंने अपने जीवन में अस्पृश्यता की जड़ काट डाली थी, वे बेधड़क अंत्यजों से मिलती थी और उनकी सेवा करती थी। उनके पास पैसा था, पर उनकी अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम थी। इन बहन का विशेष परिचय गोधरा की परिषद में प्राप्त हुआ। अपना दुःख मैंने उनके सामने रखा और दमयन्ती जिस तरह नल की खोज मे भटकती थी, उसी प्रकार चरखे की खोज में भटकने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने मेरा बोझ हलका कर दिया।

स्वतंत्रता आन्दोलन में खादी एवं महत्वः– भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में खादी का बहुत महत्व रहा है। 1920 के असहयोग आन्दोलन में गांधी जी ने भारतीयों को चरखे और खादी के रूप में एक ऐसा ब्रह्मास्त्र दिया था जिसका तोड़ अंग्रेज सरकार के पास नहीं था । हजारों साल से विश्व के सबसे बड़े वस्त्र निर्यातक देश भारत को विदेशी कपड़ों का सबसे बड़ा अयातक देश बनाने में अंग्रेजों को मात्र डेढ़ सौ साल लगे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही स्वदेशी के महत्व को स्वीकार किया जाने लगा और आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास के साथ साथ इसका भी व्यापक प्रचार प्रसार होने लगा था । गांधी ने गांवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिय खादी के प्रचार प्रसार पर बहुत जोर दिया। गांधी जी के द्वारा असहयोग आन्दोलन में खादी के प्रयोग हेतु भारतीय जनमानस का जिस प्रकार आवाहन किया गया उसे तत्कालीन साहित्यकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' प्रकाशित हुई थी–

'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजे, विनय इतना हमारा मान लीजे,
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो, न जाओ पास उससे दूर भागो।
अरे भाई, अरे प्यारे सुनो बात, स्वदेशी वस्त्र से शोभित करो गात,
व्यर्थ क्यों फूंकते हो देश का दाम, करो मत और अपना नाम बदनाम।

गाँधी जी ने चरखे को भगवान श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र के रूप में प्रस्तुत किया। गांधी जी के इस सुदर्शन चक्र ने अन्याय और दमन का ऐसा प्रतिकार किया कि अन्यायी और आततायी भी उनके प्रशंसक बन गए। इसी प्रकार सोहन लाल द्विवेदी की कविता ''भैरवी'' में खादी को भारत के सभी असाध्य आर्थिक रोगों के लिए संजीवनी के रूप में प्रस्तुत किया गया–

खादी के धागे धागे में, अपने पन का अभिमान भरा ।
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा,
खादी ही भर –भर देश प्रेम का, प्याला मधुर पिलाएगी,
खादी ही दे–दे संजीवन, मुर्दों को पुनः जिलाएगी।

बापू मीराबाई का एक भजन अनेक बार स्मरण करते थे– काचे तांतड़े रे मने हरिजीए रे बाँधी – एक कच्चा तार है उसने मुझे बाँधा है और यह इतना मजबूत है कि उसके बल पर भगवान मुझे खींचते हैं य मैं उससे खींचीं जाती हूँ। इस कच्चे तार की प्रेमरज्जु से सारे विश्व को खींच सकते हैं और हम भी इसके पास खींचे जाते हैं, यह भाव चरखे के पीछे निहित है।[5]

असहयोग आन्दोलन की नींव सितम्बर 1920 ई0 में कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में पड़ी और जनवरी 1921 में विधिवत रूप से आन्दोलन की शुरूआत हुई जिसके प्रमुख कार्यक्रमों मे से एक विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एवं देशी और हाथ से बुने हुए वस्त्रों का प्रयोग था । शीध्र ही असहयोग आन्दोलन कई कारणों से शहरों में धीमा पड़ने लगा जिनमें से एक कारण था, खादी का कपड़ा मिलों में भारी पैमाने पर बनने वाले कपड़ों के मुकाबले प्रायः मंहगा होता था और गरीब उसे नहीं खरीद सकते थे। वे मिलों के कपड़ों का लम्बे समय तक बहिष्कार कैसे कर सकते थे?

दूसरी ओर असहयोग आन्दोलन में गांधी जी की अपील पर जे0बी0 कृपलानी ने भी विश्वविद्यालय से इस्तीफा दिया उनके साथ 25 छात्रों ने भी पढ़ाई छोड़ी और विश्वविद्यालय से बाहर आ गये । उन लोगों ने कृपलानी के नेतृत्व में चरखा ओर खादी का काम शुरू किया एवं अपनी संस्था का नाम गांधी आश्रम रखा।

गांधी जी ने स्वदेशी वस्त्र उत्पादन के कार्य को पुर्नजीवित करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये वर्ष 1925 में अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना से खादी कार्य का सूत्रपात किया। गांधी जी का लक्ष्य खादी उद्योग के माध्यम से शोषण मुक्त समाज की रचना करना था । एक बार गांधी जी ने कहा भी था, ''यदि कोई मुझे हाथ कताई से बेहतर सुविचारित व्यापक कार्यक्रम बनाये तो मैं आज चरखा का त्याग कर दूँगा परन्तु अभी तक न तो मैंने देखा है और न ही मुझे दिखाया गया है। यदि ऐसा कोई सुविचारित कार्यक्रम है तो उसे जानने के लिए मैं उत्सुक हूँ।''[6] अखिल भारतीय चरखा संघ की कार्यपद्धति के संस्करण से जो व्यवहृत बातें निकलीं, उनका लिखा सूत्र बना। वह गांधी जी ने अपने हस्ताक्षर से लिख दिया '' कातो समझबूझकर कातो । जो कातें वे खद्दर बने और पहने वे जरूर कातें।[7]

खद्दर भारतीय जनता की आबरू की चादर थी। वह उनकी गरीबी के लिए रामबाण थी जिसके प्रयोग की बापू ने राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में अनिवार्यता घोषित की थी। ''खद्दर की लिबास हथियार की लड़ाई की निराली वर्दी है। अगर इस वेश को हम अपना सके,तो बगैर रक्तपात के इस देश को हम लौटा सकेगें।..... यह गांधी की टोपी शहीदों के सर पर सफेद कफन का सेहरा है – देश पर कुर्बानी का तुर्रा है''।[8]

गाँधी के लिए चरखा केवल रोजगार का साधन नहीं था, हालाँकि उस साधन के तौर पर उसका महत्व कम नहीं था। बेरोजगारी और दरिद्रता का समाधान उसमें अवश्य निहित था, लेकिन गाँधी के लिए चरखा मुखयतः अहिंसा का प्रतीक था। न्याय, समता और स्वतंत्रता की निशानी था। आजादी की लड़ाई के दौरान गाँधी जी के लिए चरखा सही और समग्र आजादी की तरफ बढ़ने का भी साधन था। अहिंसक परिवर्तन की लड़ाई में वह उनका हथियार था लेकिन समाज परिवर्तन का कारगर साधन कैसे बने। इसीलिए 1944 में उन्होंने खादी के नव–संस्करण की बात कही और खादी सेवकों को समग्र ग्रामसेवा के लिए गाँव –गाँव में फैलने का आवाहन किया। इस ग्रामसेवा से ग्राम स्वराज्य की तरफ कदम बढ़ना अभीष्ट था।

आजादी के बाद खादी: गांधी जी का लक्ष्य खादी उद्योग के माध्यम से शोषण मुक्त समाज की रचना था। वर्ष 1947 तक यह उद्योग गांधी जी के मार्ग दर्शन में रहा। वर्ष 1948 में भारत की औद्योगिक नीति घोषित की गई जिसमें खादी और ग्रामोद्योग को देश के ग्रामीण आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण माध्यम मानते हुए उन्हें प्रोत्साहित करने का निश्चय किया गया। 1956 में भारत सरकार ने खादी ग्रामोद्योग के गठन के समय 26 ग्रामोद्योग निर्धारित किये। जुलाई 1987 और 2006 में कानून में संशोधन करके 70 नए ग्रामोद्योग जोड़े गए। यह आयोग भारत सरकार के प्रशासनिक विभाग सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम मंत्रालय (डैडम) के नियंत्रण में कार्य करता है।

वर्तमान समय में खादी: आज खादी का मूल संकट दो प्रकार का है:– एक कृषि उत्पादन और दूसरा रोजगार । खादी में दोनो घट रहा है। सर्व प्रथम यह जानना आवश्यक है कि खादी और ग्रामोद्योग दोनों अलग अलग हैं किन्तु दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। गांधी जी ने भी कहा था कि ''खादी एक विचार हैं, एक संदेश है, एक दर्शन हैं।'' खादी में अभी भी अपार संभावनाएँ हैं। चाहे हम समाज के समान आर्थिक विकास की बात करें या विकेन्द्रीकृत आर्थिक विकास की या भावी पीढ़ी के युवाओं को रोजगार देने की । खादी को पुर्नजीवित करने के लिए सरकार को युद्ध स्तर पर प्रयास करने होंगें। आंकड़ो के अनुसार देश में लगभग 50 लाख लोग सीधे या परोक्ष रूप से हथकरघा उद्योग से जुड़े हुए हैं, इनमें से आठ लाख लोग पिछले कुछ वर्षों से अपनी यह छोटी मोटी आजीविका का साधन भी खो चुके हैं।

निष्कर्ष: स्वतंत्रता काल के दौरान स्वदेशी से स्वराज्य प्राप्ति का एक प्रमुख माध्यम खादी था। खादी राष्ट्रीय अस्मिता, गौरव और समृद्धि की जीती जागती प्रतीक रही है। यह भारतीय संस्कृति का एक जीवन्त प्रमाण है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि देश के युवावर्ग खादी का प्रचार प्रसार करें व स्वयं इसे अपनाऐं । प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक समारोह में खादी को बढ़ावा देने के लिए नारा दिया था ''खादी फार नेशन, खादी फार फैशन'' और लोगों ने अपील की थी कि खादी का कम से कम एक परिधान अवश्य खरीदें। गांधी जी के अवतरण के डेढ़ शताब्दी वर्ष में गांधी जी को याद करते हुए उनके विभिन्न विचारों एवं चिन्तन को योजनाओं एवं जीवनचर्या के रूप में प्रारंभ किया गया है लेकिन भारत के महाशक्ति बनने के स्वप्न और लक्ष्य को देखते हुए जिस तेजी से अगले कुछ वर्षो में नये शहरों को विकसित करने की योजनाऐं बन रही हैं उनसे एक मुख्य यक्ष प्रश्न उभरता है कि जब गाँव ही नहीं बचेंगे तो खादी और उससे जुड़े कुटीर उद्योगों का क्या होगा? साथ ही रोजगार सृजन में खादी की क्या कोई भूमिका होगी? अतः हम एवं आप तथा सरकार को खादी के लक्ष्य एवं उद्देश्य तथा दिशा का एक राष्ट्रव्यापी खाका खींचने की दिशा में आगे बढ़ने होगा तभी खादी राष्ट्रीय प्रगति में अपना बहुमूल्य योगदान कर सकती है।

संदर्भ सूची

1. सं0 कुमार प्रशांत, महात्मागाँधी स्वदेंशी की ललकार, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी पृष्ठ –8
2. विनोबा भावे खादी विचार – सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी, 1967, पृ0 –9
3. शिव राम पल्ली, खादी विचार, पृ0 –14
4. मोहनदास करमचन्द गांधी – सत्य के प्रयोग, साक्षी प्रकाशन दिल्ली, 2013, पृ0 307
5. विनोबा साहित्य, खण्ड 15, पृ0 170
6. प्रतियोगिता दर्पण लेख (भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतीक खादी एवं ग्रामोद्योग)जनवरी 2011, पृ0 1068
7. श्रीकृष्ण दास जाजू, चरखे पुनर्जीवन, पृ0–18
8. राजा राधिकारमन प्रसाद सिंह, गाँधी टोपी, पृ0–202